प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा का महत्त्व

इन्दु प्रसाद

इस समय भारत में शिक्षा का एकमात्र अनियंत्रित क्षेत्र प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा है। स्कूली शिक्षा के लिए अनेक नियम हैं, और अब तो सार्वभौमिक स्कूली शिक्षा के लिए एक कानून भी है, तथा अनेकों विधान, नीतिगत ढाँचे तथा रूपरेखाएँ हैं। पर, वास्तव में इस तरह का कुछ भी प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के लिए नहीं है। हमारे पास ग्रामीण क्षेत्रों में आँगनवाड़ियों के माध्यम से एक सरकारी पूर्व–स्कूल (प्री–स्कूल) व्यवस्था अवश्य है। पर निजी क्षेत्र में इस पर कतई कोई नियंत्रण नहीं है। इसलिए मैं आज अपने घर में एक पूर्व–स्कूल प्रारम्भ करने का निर्णय ले सकती हूँ और कोई भी मुझसे इस बारे में कोई सवाल नहीं करेगा। न यह पूछेगा कि किस पाठ्यक्रम/बोर्ड का अनुसरण किया जाना है, क्या जब बच्चे 18 माह के हों तब उन्हें लेना विधिसम्मत है, या उन्हें केवल 3 वर्ष की आयु में ही लिया जाना चाहिए, किन न्यूनतम सुरक्षा मानदण्डों का पालन किया जाना चाहिए, संचालक द्वारा कोई प्रशिक्षण प्राप्त किया गया है या नहीं, आदि। अतः, यह सबके लिए एक पूरी तरह से खुली छूट वाला क्षेत्र है। इसलिए प्रारम्भिक बाल शिक्षा तथा देखरेख के लिए, विशेष रूप से शहरी क्षेत्र में, सभी तरह के निजी केन्द्रों – शिशु सदन (डेकेयर सेंटर्स), झूला घर (क्रेश), पूर्व–स्कूल, आदि – की जैसे बाढ़–सी आ गई है। इनमें से किसी को भी आरम्भ करने और चलाने के लिए कोई नियम नहीं हैं। अतः यह चिन्ता का बहुत बड़ा मुद्दा है क्योंकि यह बच्चों की सुरक्षा, उनके सीखने, उनके बड़े होने तथा उनके विकास को प्रभावित करता है। बचपन के प्रारम्भिक वर्षों का दौर किसी बच्चे के विकास के सबसे महत्त्वपूर्ण कालखण्डों में से एक होता है।

जहाँ यह शहरी इलाकों का परिदृश्य है, वहीं ग्रामीण इलाकों में सरकारी आँगनवाड़ियों का नियंत्रित क्षेत्र है। समग्र रूप से इसका विचार और अधिकांश राज्यों में इसके पाठ्यक्रम सम्बन्धी जो दिशा निर्देश तथा पोषण आदि के लिए मानदण्ड निर्धारित किए गए हैं, वे काफी सराहनीय हैं। परन्तु, विभिन्न कारणों से इसका क्रियान्वयन बहुत शोचनीय है। इसलिए, हमारे सामने दोनों स्थितियाँ हैं, एक ओर शहरी, अर्ध शहरी तथा ग्रामीण अनियंत्रित निजी क्षेत्र है, तथा दूसरी ओर नियंत्रित सरकारी क्षेत्र है जो काफी दयनीय हालत में है। प्रकट रूप से, तमिलनाडु अपने आई.सी.डी.एस. (इंटीग्रेटेड चाइल्ड डेवेलपमेंट सर्विसेज – एकीकृत बाल विकास सेवाएँ) कार्यक्रम में बहुत अच्छा कर रहा है, पर यह उसके सापेक्ष ही 'बहुत अच्छा' है जैसा देश के अधिकांश अन्य भागों में हो रहा है। हमें इसकी भी कोई जानकारी नहीं है कि निजी, हालाँकि अनियंत्रित, क्षेत्र कोई अच्छी सेवा प्रदान कर रहा है या नहीं। उचित पैमाने पर इसके बारे में बहुत ही थोड़े शोधकार्य या अध्ययन किए गए हैं जो हमें बता सकें कि वास्तव में क्या हो रहा है। पड़ोसी के अतिरिक्त कमरे, या गैरेज, या बगीचे में चलाए जा रहे पूर्व–स्कूल से लेकर बहुत ऊपरी धनाड्य छोर वाली परिष्कृत पूर्व–स्कूल व्यवस्थाओं (जो बहुत अच्छी दिखती हैं पर अधिकांश लोगों की आर्थिक सामर्थ्य से परे होती हैं) तक इनकी एक पूरी शृंखला है। यह एक ऐसा विराट क्षेत्र है, जिसमें कोई साझे सिद्धान्त नहीं हैं, इसलिए इसमें 'निजी क्षेत्र' कहलाने वाली एकल सत्ता जैसी कोई चीज नहीं है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण आयाम यह है कि हमारे यहाँ विशाल संख्या में ऐसे बच्चे भी हैं जो सीखने के व्यवस्थित वातावरण के किसी भी पूर्व अनुभव के बिना, अपने जीवन के पहले साढ़े पाँच या छह वर्ष घर पर बिताकर, या उसमें से कुछ समय किसी नाकाम आँगनवाड़ी में बिताकर या किसी प्रकार ऐसे ही गुजारकर, सीधे ही सरकारी स्कूलों की कक्षा 1 में चले आते हैं। इसलिए, हमारे देश में ढेर सारे ऐसे बच्चे हैं जिनके प्रथम छह वर्ष काफी बेतरतीब होते हैं, जिनमें इस बारे में कोई वास्तविक सोच–विचार नहीं होता कि बच्चों के साथ क्या हो रहा है – इस तथ्य को देखते

हुए कि ऐसी अधिकांश स्थितियों में माता–पिता, दोनों ही काम करने वाले होते हैं, और पारिवारिक सहारे की कोई व्यवस्था कभी उपलब्ध होती है और कभी नहीं। साथ ही इसमें पोषण, स्वास्थ्य तथा सुरक्षा की समस्याएँ भी जुड़ी रहती हैं। ऐसा नहीं है कि हर जगह यही हो रहा है, लेकिन हमारे देश में बच्चे के जीवन के प्रथम छह वर्षों में जो हो रहा है, एक तरह से यह उसका एक व्यापक चित्र है।

एक अन्य वर्ग शहरों में रोजी–रोटी के लिए बाहर से पलायन करके आने वाले लोगों का है, जिसमें छोटे बच्चे अपने माता–पिताओं के साथ, उदाहरण के लिए, एक निर्माणाधीन जगह से दूसरी जगह पर डेरा डालते रहते हैं। उनका क्या होता है? वे ज्यादातर काफी अस्वच्छ और असुरक्षित परिवेशों में रहते हैं। परियोजना के आकार आदि पर निर्भर करते हुए भवन–निर्माताओं के लिए एक झूलाघर चलाना आवश्यक होता है। पर अनेक ऐसा नहीं करते। यह एक अन्य बहुत ही ढीले–ढाले तरीके से नियंत्रित क्षेत्र है। प्रदूषण, सुरक्षा, आसपास फैले हुए उपकरण, देखभाल का अभाव, स्वच्छता का अभाव, पोषण की कमी आदि को देखते हुए, यह इन बच्चों के लिए एक अत्यंत कठिन परिस्थिति होती है। इसके साथ ही, अपने गाँवों से पलायन करके आने के कारण वे अपने घरों के सहज परिवेश से भी दूर होते हैं। वे उनके गाँवों में बसे हुए बृहत परिवारों और समुदायों से कट जाते हैं और यहाँ छोटे केन्द्रीय परिवारों में, अकसर ऐसी जगहों पर रहते हैं जहाँ की भाषा उनकी अपनी भाषा से बहुत भिन्न होती है।

इसके अलावा, हम परिवार के पूरे स्वरूप में परिवर्तन के दौर से गुजर रहे हैं, जो अर्ध–शहरी तथा शहरी परिवारों को अधिक प्रभावित कर रहा है। अब घर पर दादा–दादी, नाना–नानी, चाची, बुआ, मौसी, चाचा, मामा और अन्य बच्चों आदि से भरे–पूरे परिवार निरन्तर घटते जा रहे हैं। पहले, आप लगभग दस बच्चों में से एक होते थे, जिसकी दादी या नानी नियमित रूप से कहानी सुनाती थी; हर समय आपके साथ कोई खेलने वाला होता था। रसोईघर, जो अनेक प्रकार की चीजों से भरी एक अद्‌भुत जगह होती है, आपकी पहुँच में होता था। साथ ही बगीचे तथा जानवरों तक भी आपकी पहुँच होती थी। चारों ओर बहुत सी चीजें होती रहती थीं जो सब मिलकर बच्चों के सीखने के लिए बहुत ही अनुकूल वातावरण निर्मित करती थीं। चूँकि आसपास अनेक और हर प्रकार के, बड़े लोग होते थे, इसलिए बच्चा ढेर सारी भाषा का अनुभव करता था। बच्चे को सीखने और बढ़ने के लिए ऐसे सभी प्रकार के अवसर मिलते थे, जो जरूरी नहीं कि किसी ढाँचे के अन्तर्गत होते थे। धीरे–धीरे एक या दो बच्चों वाले परिवार होने लगे, और इस तरह की पारस्परिक अन्तःक्रियाएँ निरन्तर कम होती गईं, जिसके कारण बच्चे के लिए चीजों को साझा करने की सोच, तथा एक–दूसरे के साथ रहने की सोच को समझना, स्वयं भाषा को सीखना, तर्क प्रक्रिया को ग्रहण करना, आदि कठिन होता जा रहा है। उदाहरण के लिए, आप देखेंगे कि दो या तीन बच्चों वाले घरों में, छोटा बच्चा अकसर चीजें ज्यादा जल्दी सीखता है। ऐसा नहीं कि छोटा बच्चा ज्यादा बुद्धिमान है या बड़ा बच्चा कम प्रतिभाशाली है। यह केवल अवसर की सुलभता की बात है – जब छोटा बच्चा उस दौर में होता है जिसमें उसका मस्तिष्क प्रखर और एक सोख्ते की तरह होता है, तब उसे एक ऐसे बड़े बच्चे की संगति का अवसर मिलता है जो पहले से ही अनेक बातें सीख रहा होता है।

शोध बताता है कि एक बच्चे के विकास – संज्ञानात्मक विकास, भावनात्मक विकास, सामान्य स्वास्थ्य, सीखने के प्रति रुझानों में विकास, दूसरों के प्रति रुख, आदि – में पहले छह वर्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। ये शिशुओं के लिए बड़ी बातें प्रतीत हो सकती हैं, पर ये वाकई में बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं, क्योंकि वे अनेक रुझानों और अपेक्षाओं को निर्मित करती हैं। मुझे लगता है कि बच्चे पहले छह वर्षों में जिस तरह भाषा सीखते हैं, उस तरह की सरलता से वे उसे फिर कभी नहीं सीखते। यदि हम मस्तिष्क के विकास को देखें, तो जिस प्रकार के स्नायुविक सम्बन्ध पहले बारह वर्षों में, और निश्चित ही पहले छह वर्षों में, बन रहे होते हैं, वे फिर कभी दोहराए नहीं जाते। निर्मित होने वाले स्नायुविक सम्बन्धों की संख्या वास्तव में आपके सीखने का परिमाण दर्शाती है – इस बात को कहने का शायद यह तकनीकी ढंग न हो, पर इसे समझने का यह एक सरलीकृत तरीका है। बच्चों को मिलने वाले विविध प्रकार के अनुभवों, और अनुभवों के बार–बार दोहराए जाने से ही किसी बच्चे को ज्यादा तेजी से सीखने में मदद मिलती है, और इससे हमारा मतलब उसके लिए उचित समय या आयु के पहले सीखना नहीं है। इसका आशय केवल इतना है कि चीजों को देखने में सक्षम होना, अवधारणाओं को विकसित करना, आसपास जो घट रहा है उसकी गतिकी को समझना, चीजों के जुड़ावों को

देखना, सम्बन्धों को देखना – ये सभी बहुत जल्दी प्रारम्भ हो जाते हैं। इसमें भाषा बड़ी भूमिका निभाती है, क्योंकि भाषा तथा संज्ञान बहुत घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं। भाषा वह माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने लिए और दूसरों के लिए संसार का निर्माण करते हैं। भाषा का सीखना जीवन में बहुत जल्दी शुरू हो जाता है। इसलिए, जब वे बहुत छोटे होते हैं तब भी, बच्चों से खूब बात करना, उन्हें चीजों को समझाना, उनसे चर्चा करना उनके भाषा कौशलों को विकसित करने में जबर्दस्त रूप से उनकी मदद करता है। हो सकता है कि तब बच्चों ने बोलना न सीखा हो, और भाषा का मतलब बोलना हो यह जरूरी भी नहीं है। सबसे पहले और सबसे ऊपर, भाषा वह तरीका है जिससे हम सोचते हैं, और बच्चे निरन्तर सोचते रहते हैं। बोलना, पढ़ना और लिखना बाद में आते हैं।

जिस बात से फर्क पड़ेगा वह है बच्चे (कह सकते हैं कि 2–3 वर्ष की आयु का) का ऐसे घर में बड़ा होना जहाँ लिखा हुआ शब्द मूल्यवान माना जाता है, इसलिए जहाँ बच्चा अपनी माँ, पिता, दादा, बड़े भाई या बहिन के साथ बैठता है और किसी किताब के पन्ने पलटते हुए, कोई कहानी सुनते हुए, कहानी और लिखे हुए शब्द के बीच के सम्बन्ध को समझते हुए, और यह समझते हुए कि लिखित शब्द के भीतर एक जादुई दुनिया बसती है, वह प्रतिदिन कुछ घण्टे बिताता है; पाँच या छह वर्ष की आयु तक पहुँचने पर इस बच्चे ने जिस प्रकार की भाषा विकसित कर ली होगी वह उसके लिए उन ऊँचे स्तर की अवधारणाओं को समझना और ग्रहण करना ज्यादा आसान बना देगी जिन्हें उसे स्कूल में सीखना होगा, क्योंकि उसका आधार पहले ही तैयार हो चुका होगा। दूसरे, उसने सीखने के प्रति लगाव भी विकसित कर लिया होता है क्योंकि सीखने के साथ उसे सकारात्मक अनुभव हुए होते हैं, और वे सकारात्मक अनुभव (अच्छी अनुभूतियाँ, आनन्दपूर्ण परिस्थितियाँ, कुछ रोमांचक क्रियाएँ) उसके मस्तिष्क की संरचना में बस गए होते हैं, और वे सभी उसके मन में समझ का एक संजाल बनाते हैं।

अब हम एक दूसरी स्थिति पर विचार करें – ऐसा घर जहाँ इस प्रकार के संसाधन का अभाव है, और उस तरह के घर का अमीर या गरीब होना जरूरी नहीं है, क्योंकि इसका धन से कोई लेना–देना नहीं होता। जहाँ धन से संसाधनों तक आपकी पहुँच आसान हो जाती है, जबकि कठिन सामाजिक–आर्थिक हालातों से आने वाले बच्चों को बहुत संघर्ष करना पड़ता है, वहीं ऐसे भी घर होते हैं जहाँ संसाधन तो होते हैं लेकिन सीखने की संस्कृति, पढ़ने के प्रति लगाव, किताबों तक पहुँच और पढ़ने तथा लिखने के बारे में उत्साह और रोमांच नदारद रहते हैं। इसलिए बच्चा उस सबके अनुभव के बिना ही छह वर्ष की उम्र में कक्षा 1 में आता है, फलस्वरूप उसे उस प्रकार के संयोजन बिठाने में सक्षम होने के लिए, विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों को समझ पाने के लिए, और अनेक अवधारणाओं को समझने के लिए कुछ समय लगता है – अतः इस दृष्टि से ऐसा बच्चा थोड़ी बाधाग्रस्त पृष्ठभूमि के साथ आता है।

पूर्व–स्कूल की धारणा वास्तव में इन अवसरों (ऐन्द्रिक अन्वेषण, संज्ञानात्मक अन्वेषण, तथा भावनात्मक जुड़ाव को प्रोत्साहित करना, एक–दूसरे के साथ खेलना सीखना, दूसरे मनुष्य के बारे में, वस्तुओं के बारे में सोचना सीखना, रंग को समझना, पढ़ने का आनन्द लेना सीखना) को प्रदान करने के लिए है। उस समय इस तरह की अनेक बातें आनन्ददायी तथा अच्छे अनुभवों के साथ सिखाई जाती हैं। यह एक स्थाई सम्बन्ध बना देता है। और यदि यह भावनात्मक सुरक्षा के वातावरण (ऐसा वातावरण जिसमें बच्चा बस बच्चा होता है। उसे जैसा वह है वैसा ही स्वीकार किया जाता है, प्रोत्साहित किया जाता है, उसे सराहा और प्यार किया जाता है, उसकी जरूरतों को समझा जाता है) में हो तो समूचा अनुभव बच्चे के मन में एक सकारात्मक बोध की तरह बैठ जाता है और हमेशा के लिए बस जाता है। इसका उल्टा भी सच होता है। प्रारम्भिक बचपन में बहुत कठिन अनुभवों (अभावों के अनुभव, हर प्रकार की हिंसा के अनुभव, ऐसे बड़े लोगों के साथ हुए अनुभव जो उन्हें छोटी उम्र में ताकतवर से भयभीत होना सिखा देते हैं जिससे उनमें बड़ों के प्रति, तथा अधिकार–सम्पन्न और नियंत्रण रखने वाले व्यक्ति के प्रति भय विकसित हो जाता है) से गुजरने वाले बच्चों के मन में ऐसे सन्देश बहुत जल्दी घर कर जाते हैं।

पर इतना भर कह देना काफी नहीं है कि बच्चों को बचपन में सीखने को प्रेरित करने वाले सकारात्मक अनुभव होना जरूरी है; वास्तव में परिणाम इस पर निर्भर करता है कि वे अनुभव दरअसल में क्या हैं। अतः मैं यह कहूँगी कि एक रद्दी खेल–स्कूल में भेजने के बजाय बच्चे को एक आनन्दपूर्ण घर पर रखना बेहतर है। यहाँ तक कि ऐसे माता–पिता या

दादा–दादी / नाना–नानी, जो ठीक–ठीक नहीं जानते कि बच्चे के साथ क्या करना चाहिए, का साथ भी बच्चों के लिए उससे कहीं कम नुकसानदायक होता है कि उन्हें ऐसे पूर्व–स्कूल में भेज दिया जाए जहाँ एक ढाँचा और सीखना तो होता है, लेकिन यह सीखना या तो उनकी उम्र से परे होता है या भय और दबाव के कारण होता है। यहाँ अपेक्षित पूरी सोच ही इस उम्र में आनन्द के अनुभव निर्मित करने और रोमांच जगाने की है। तब पहले से ही, बच्चे सवाल पूछ रहे होते हैं, जिज्ञासु होते हैं, और अनेक चीजों के द्वारा उत्साहित और रोमांचित होते हैं, ऐसी चीजों के द्वारा भी जो बड़ों को एकदम साधारण दिखाई देती हैं; बच्चों के लिए यह पूरी दुनिया ही बिलकुल नई, और रोमांच तथा दिलचस्पी से भरी होती है – जीवित रहने के लिए यह उनकी सहज निधि होती है। अपने–आप में भाषा की धारणा (जिसमें हर चीज का एक नाम होता है, एक ऐसी व्यवस्था जहाँ आप एक चीज को किसी नाम से बुला सकते हैं और किसी अन्य चीज को किसी और नाम से) और रंग की धारणा तथा एक रंग के जो विभिन्न गहरे, हल्के रूप हो सकते हैं – ये सभी अद्भुत होता है, संसार वाकई में एक रोमांचक स्थान होता है, खासकर उसके लिए जो बस इसमें प्रवेश कर रहा होता है। इसलिए यहाँ सोच यह है कि हम अपने बच्चों को इस तरह के अनुभव दें, जो संज्ञानात्मक दृष्टि से उत्प्रेरक और भावनात्मक रूप से सुरक्षित हों। यदि यह सम्भव होता है, तो सीखने के प्रति एक सकारात्मक रवैए का आधार निर्मित करने के साथ–साथ यह बच्चे के स्कूल में प्रवेश करने की राह को सुगम बना देता है।

पोषण एक अत्यन्त निर्णायक भूमिका निभाता है। और हमारे देश में यह एक बड़ा मुद्दा है क्योंकि कक्षा 1 में छह वर्ष की आयु में प्रवेश करने वाले हमारे अधिकांश बच्चे पोषण की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण तत्वों (विटामिन बी कॉम्प्लेक्स, खनिज, आदि) की कमी से ग्रस्त होते हैं। उनमें से अनेक, विशेष रूप से हमारी लड़कियाँ, खून की कमी से पीड़ित रहते हैं। इन सभी महत्त्वपूर्ण तत्वों की संज्ञानात्मक क्षमता में बहुत बड़ी भूमिका होती है। पोषण की कमी तथा संज्ञानात्मक क्षमता में बहुत मजबूत पारस्परिक सम्बन्ध होता है। इसलिए कक्षा 1 में प्रवेश करने वाले हमारे अधिकांश बच्चे पहले ही तीन कदम पीछे होते हैं, यही कारण है कि आँगनवाड़ी व्यवस्था में, पोषण का पहलू एक बड़ा हिस्सा होता है – ऐसा हिस्सा जिसकी हम निश्चित रूप से अपने देश में उपेक्षा नहीं कर सकते।

मध्यान्ह भोजन योजना के पीछे ठीक यही कारण था। एक तो यह उपस्थिति बढ़ाने के लिए था, लेकिन दूसरा सहज कारण था कि भोजन, मस्तिष्क के काम करने और सीखने में सीधा पारस्परिक सम्बन्ध होता है। यदि आप स्कैंडिनेवियाई देशों को देखें, उदाहरण के लिए फिनलैण्ड को, तो वे संसार के सबसे धनी देशों में से है, लेकिन उन सभी देशों के स्कूलों में मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम होता है। इसका कारण यह नहीं है कि बच्चे दोपहर का भोजन खरीदकर करने में आर्थिक रूप से सक्षम नहीं होते, या वे ऐसे घरों से आते हैं जो पोषण की दृष्टि से समस्याग्रस्त होते हैं, बल्कि ऐसा इसलिए है कि वे इसे बहुत बुनियादी और शिक्षा का अत्यावश्यक अंग मानते हैं। इसका धनी या गरीब होने से कोई लेना–देना नहीं है, बल्कि इसका कारण यह तथ्य है कि पोषण तथा सीखने में एक–दूसरे से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। पोषण न केवल आपके शरीर से जुड़ता है, बल्कि उस तरीके से भी जुड़ा होता है जिस तरह आपका मस्तिष्क काम करता है। उदाहरण के लिए, खून की कमी (अनीमिया – रक्ताल्पता) का प्रभाव स्मरण शक्ति पर पड़ता है, जो सीखने का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा होती है। इसलिए पूर्व–स्कूल में मुद्दे मस्तिष्क के विकास से, और इसलिए हम बच्चे को कैसा उत्प्रेरक वातावरण देते हैं, उसे किस तरह के सम्बन्ध निर्मित करने में मदद करते हैं, हम किस तरह का शारीरिक पोषण प्रदान करते हैं, और शारीरिक गतिविधियों के लिए जो जगह देते हैं आदि बातों से जुड़े होते हैं। यही कारण है कि हमने संगठित, संरचित पूर्व–स्कूल के वातावरण की धारणा विकसित की। अन्यथा, जिन परिवारों में ये सुविधाएँ उपलब्ध रहती हैं वे इस दृष्टि से अपने–आप में पर्याप्त हैं। मैं मानती हूँ, और बहुत लोग मुझसे असहमत हो सकते हैं, कि यदि ऐसा घर है जो ये सभी चीजें प्रदान करता है, तो वास्तव में उसके जैसी और कोई जगह नहीं हो सकती। उसका औपचारिक रूप से स्कूल होना जरूरी नहीं है। बच्चे को पूर्व–स्कूल भेजने से केवल यह होता है कि इससे उसे ऐसे संरचित वातावरण की आदत पड़ जाती है जिसका सामना उसे छह वर्ष की उम्र में करना पड़ेगा जब वह एक नियमित स्कूल में जाएगा। लेकिन भली–भाँति सबसे जुड़कर विकसित हुए बच्चों को एक नए वातावरण से तालमेल बिठाने में लम्बा समय नहीं लगता; वे इसे काफी जल्दी सीख लेते हैं।

एक बच्चे के समग्र विकास में प्रारम्भिक बचपन के इतना महत्त्वपूर्ण होने के बावजूद, लगता है कि हमने किन्ही कारणों से इसे अपेक्षित महत्त्व नहीं दिया है। जहाँ एक ओर उच्च शिक्षा पर यहाँ बहुत ध्यान दिया जा रहा है, वहीं जीवन की एकदम शुरुआत को एक तरह से भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जा रहा है। पूर्व–स्कूल शिक्षा, शिक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत नहीं आती। यह महिला एवं बाल विकास मंत्रालय का हिस्सा होती है। केन्द्र में यह विभाग सामाजिक न्याय तथा सशक्तीकरण मंत्रालय कहलाता है, पर राज्य सरकारों में यह विषय महिला एवं बाल विकास के अन्तर्गत होता है। पूरी आँगनवाड़ी व्यवस्था इसके कार्य–क्षेत्र के अन्तर्गत आती है। यदि किसी एक ही परिसर में एक प्राथमिक स्कूल के साथ एक आँगनवाड़ी भी हो तो दोनों में व्यवस्था के स्तर पर एक – दूसरे से कोई नाता नहीं होता। एक बच्चा आँगनवाड़ी में जो कुछ सीखता है, और जो कुछ वह स्कूल में कक्षा 1 में सीखेगा, उन दोनों के बीच में कोई जुड़ाव नहीं होता। आँगनवाड़ी तथा प्राथमिक स्कूल के बीच में कोई बातचीत नहीं होती। इसलिए व्यवस्थात्मक दृष्टि से, आँगनवाड़ी व्यवस्था तथा प्राथमिक स्कूल व्यवस्था के बीच कतई कोई सम्बन्ध नहीं है। एक तो, प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा को किसी बच्चे की शिक्षा के सतत प्रवाह के अंग के रूप में नहीं देखा जाता, और दूसरे इसे बच्चे की समग्र शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता।

प्रारम्भिक बचपन को अभी भी अधिकतर केवल स्वास्थ्य तथा चिकित्सा के दृष्टिकोण से ही देखा जा रहा है, अर्थात जोर अभी भी सुरक्षित जन्म, टीकाकरण आदि पर ही है। एक व्यवस्था के रूप में और व्यापक रूप से समाज के हिस्से की तरह, हमने अभी भी प्रारम्भिक बचपन के विभिन्न उत्प्रेरक तत्वों के बीच के उन सम्बन्धों को नहीं समझा है जो भविष्य के जीवन को और अधिक सशक्त बनाते हैं। उदाहरण के लिए, माता–पिता के रूप में भी हम यह नहीं समझते कि हमारी क्रियाओं में से अनेक कितनी निर्णायक होती हैं और प्रारम्भिक वर्षों में उनका कैसा प्रभाव पड़ सकता है। इसका मतलब यह नहीं है कि हमें बहुत अस्वाभाविक और संरचित माता–पिता बनने की जरूरत है, पर इस बारे में सचेत होने की आवश्यकता है कि जो कुछ भी किया जाता है उसका उस बच्चे पर प्रभाव पड़ता है जो आपके घर में रहता है। जो ढेर सारी बातों को ग्रहण करता रहा होता है, और जिसके लिए (माता–पिता के रूप में) आप उसके जीवन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति होते हैं। बच्चे के लिए, उसकी पूरी दुनिया आपके इर्दगिर्द घूमती है, और इसलिए आप जो करते हैं वह अत्यधिक रूप से निर्णायक हो जाता है। अतः बच्चा सभी अनुभवों से आपके साथ–साथ गुजरता है। इसलिए माता–पिता के रूप में हम अपनी खुद की भूमिकाओं को उतनी गम्भीरता से नहीं लेते जितनी हमें लेना चाहिए।

इसके अलावा, सर्वांगीण स्तर पर हमने इस बारे में पर्याप्त सोच–विचार नहीं किया है कि स्कूल में प्रवेश करने के पहले के पाँच–छह वर्षों में बच्चा किस प्रकार के अनुभवों से गुजरेगा और उनका कैसा प्रभाव पड़ेगा। इसके मूल में, बच्चों के बारे में, सीखने के तथा बड़े होने के बारे में, और शिक्षा के द्वारा जो किए जाने की अपेक्षा होती है उसके बारे में हमारी समग्र समझ, या उसकी कमी है। उदाहरण के लिए, मेरे पड़ोसी के घर में एक बच्चा है जो ढाई साल का है और उसकी माँ ने अपनी चिन्ता जाहिर की कि उसने अभी तक उसे पूर्व–स्कूल नहीं भेजा है, जबकि आसपास के सभी लोगों ने पहले ही अपने बच्चों को दो साल की उम्र में ही किसी पूर्व–स्कूल में डाल दिया है, और उन्होंने लिखना सीखना शुरू कर दिया है। वह बच्चा बहुत क्रियाशील है, शाम को अपार्टमेंट कॉम्प्लेक्स के बहुत से बच्चों के साथ खेलता है और पूरी सुबह अपनी दादी के साथ रहता है जो उसे पूरी तरह से खुश रखती है। मुझे इस स्थिति में अभी तक कोई कमी नहीं दिखाई देती। इसलिए उसके पूर्व–स्कूल जाने के बारे में माँ की चिन्ता उसके आसपास सब जो कर रहे हैं वह देखकर बने दबाव के कारण ज्यादा है, न कि वास्तव में बच्चे की जो जरूरत है उसके कारण। यहाँ बुनियादी खाका ही चिन्ता और भय

का कारण प्रतीत होता है। यह अपेक्षा करना तो उचित है कि बच्चे को दूसरे बच्चों से मिलना–जुड़ना चाहिए, उनके साथ काम करना, चीजों को साझा करना चाहिए, आदि, लेकिन उससे तीन वर्ष की उम्र में लिखना शुरू कर देने की अपेक्षा करना बिलकुल गैर जरूरी है। यदि हम एक बच्चे के सूक्ष्म अंग–संचालन विकास को देखें, तो लिखने की क्रिया वास्तव में आखिर में, करीब–करीब पाँच वर्ष या उससे अधिक में, घटती है। इसलिए, आसानी से जूतों के फीते बाँधने में समर्थ होना, हर तरह के बटन लगा पाना तथा लिखना वे काम हैं जो एक बच्चा तकरीबन छह साल की उम्र में ही करना शुरू करता है। और आज, अनेक पूर्व–स्कूल बच्चों को ढाई साल की उम्र में लिखने पर मजबूर करते हैं, जब मांसपेशियाँ कतई इसके लिए तैयार नहीं हुई होतीं। वास्तव में यह विकास के लिए हानिकारक है और अनेक बच्चों को क्षति पहुँचा सकता है, न केवल शारीरिक रूप से, बल्कि मानसिक रूप से भी, जो कि ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। यह तुरन्त एक अप्रीतिकर अनुभव का सन्देश भेजता है। इसके पीछे की अनुभूति या उसकी नैतिकता को एक पल के लिए पूरी तरह भुलाकर, और केवल उसके स्नायु विज्ञान को देखते हुए, यहाँ लिखने की क्रिया और वह क्रिया करने में बच्चे द्वारा महसूस किया जाने वाला दुःख, इन दोनों के बीच में एक स्नायुविक सम्बन्ध बन रहा होता है। जो सन्देश बच्चे के पास रह जाता है, वह है : "लिखना बहुत खराब काम है; मैं इसमें धीमा रहूँगा; इसके लिए लोग मुझ पर चिल्लाएँगे; मेरा हाथ दुखता है"। तब हमने इस गतिविधि को बच्चे के लिए पहले से ही दण्ड में बदल दिया है। इस गतिविधि को करने के तरीके हैं। यदि बच्चे स्वाभाविक रूप से जल्दी लिखना शुरू कर देते हैं, तो उन्हें ऐसा करने दो, लेकिन इसका निर्णय उन्हें खुद लेने दो और जैसा वे चाहें वैसा लिखने दो। इसे उस आयु में सुधारे जाने की या उनकी लिखावट की बारीकियाँ ठीक किए जाने की जरूरत नहीं है। उसे बाद में, छह साल की उम्र में, सुधारा जा सकता है, जब बच्चे का नियंत्रण बेहतर हो जाता है। यह थोड़ा बाद में करने से कोई नुकसान नहीं होता। सीखने की गति में लचीलेपन का मतलब यह नहीं है कि सीखना घटित नहीं होता। यदि एक बच्चा सकारात्मक, रोमांचक, और मानसिक रूप से चुनौती भरे अनुभवों से गुजरता है, तो वह सफल होगा, क्योंकि वह सीखने में सक्षम होने के साथ–साथ अपनी प्रखरतम मानसिक स्थिति में होता है। वह तो हम हैं जो इसे नष्ट कर देते हैं। हम ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित कर देते हैं कि उनके कारण बच्चे आठ या दस साल की उम्र पार करने तक सवाल पूछना बन्द कर देते हैं।

इन्दु प्रसाद अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलुरु के रिसोर्स सेण्टर का नेतृत्व करती हैं। फाउण्डेशन से जुड़ने से पहले वे लगभग 15 वर्षों तक स्नायुविक समस्याओं: ऑटिज्म, सेरिब्रल पाल्सी, सीखने की अक्षमताओं – से ग्रस्त बच्चों के साथ काम करने वाली, और समावेशी कक्षाओं में पढ़ाने वाली शिक्षक थीं। वे राजनीति शास्त्र में मास्टर्स के अलावा विशेष शिक्षा में बी. एड. तथा एम. एड. हैं। उनसे indu@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी